**ओ३म्**

**‘स्वामी विरजानन्द और स्वामी दयानन्द वैदिक धर्म**

**व संस्कृति के सर्वाधिक प्रेमी ऐतिहासिक देशवासी’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

धर्म व संस्कृति के इतिहास पर दृष्टि डालने पर यह तथ्य प्रकट होता है कि महाभारत काल में ह्रासोन्मुख वैदिक धर्म व संस्कृति दिन प्रतिदिन पतनोन्मुख होती गई। महाभारत युद्ध का समय लगभग पांच हजार वर्ष एक सौ वर्ष है। महाभारत काल तक भारत ही नहीं अपितु समूचे विश्व में वैदिक धर्म व संस्कृति का प्रचार रहा है। यह भी तथ्य है कि विश्व में आज से पांच हजार वर्ष पूर्व कोई अन्य मत, धर्म व संस्कृति थी ही नहीं। वेद-आर्य धर्म के पतन का कारण ऋषि-मुनि कोटि के विद्वानों व आचार्यों का अभाव व कमी ही मुख्यतः प्रतीत होती है। महाभारत युद्ध में देश के बड़ी संख्या में अनेक राजा, क्षत्रिय व विद्वान मृत्यु को प्राप्त हुए। इससे राजव्यवस्था में खामियां उत्पन्न हुई। वर्ण-संकर का कारण भी यह महाभारत युद्ध था। वैदिक वर्ण व्यवस्था धीरे-धीरे समाप्त हो गई और उसका स्थान जन्मना जाति व्यवस्था, जिसे महर्षि दयानन्द ने मरण व्यवस्था कहा है, ने ले लिया। ऋषि-मुनियों व वेदों के विद्वानों की कमी व प्रजा द्वारा धर्म-कर्म में रुचि न लेने के कारण अज्ञान व अन्धविश्वास उत्पन्न होने आरम्भ हो गये थे जो उन्नीसवीं शताब्दी, आज से लगभग 150 वर्ष पूर्व, अपनी चरम अवस्था में पहुंच चुके थे। लोगों को यह पता ही नहीं था कि यथार्थ धर्म जो सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर द्वारा चार आदि ऋषियों को दिये गए चार वेदों ऋग्वेद, यजर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद के ज्ञान से आरम्भ हुआ था, वह प्रचलित अज्ञान व अन्धविश्वासयुक्त मत वा धर्म से कहीं अधिक उत्कृष्ट व श्रेष्ठ था व है। सौभाग्य से देश के सौभाग्य का दिन तब आरम्भ हुआ जब महर्षि दयानन्द के विद्या गुरू स्वामी विरजानन्द जी का जन्म पंजाब के करतारपुर की धरती पर हुआ। बचपन में उनके माता-पिता का देहान्त हो गया था। शीतला अर्थात् चेचक का रोग होने के कारण आपकी दोनों आंखे बचपन में ही चली गई। आपके भाई व भाभी का स्वभाव व व्यवहार आपके प्रति उपेक्षा व प्रताड़ना का था। अतः आपने गृह त्याग कर दिया। आपको घर से न जाने देने व रोकने वाला तो कोई था ही नहीं। अतः आप घर छोड़ने के बाद ऋषिकेश, हरिद्वार व कनखल आदि स्थानों पर रहकर तपस्या व साधना करते रहे। संस्कृत का अध्ययन भी आपने किया। विद्या ग्रहण के प्रति उच्च भाव संस्काररूप में आपमें विद्यमान थे जिसका लाभ यह हुआ कि आप नेत्रहीन होने पर भी संस्कृत व वैदिक ज्ञान से सम्पन्न हुए जो कि विगत पांच हजार वर्षों में हुए अन्य विद्वानों के भाग्य में नहीं था।

इतिहास में स्वामी दयानन्द जी का व्यक्तित्व भी अपूर्व व महान है। वह भी 14 वर्ष की अवस्था में सन् 1839 की शिवरात्रि के दिन व्रत व पूजा में अज्ञान व अन्धविश्वास की बातों का प्रमाण अपने शिवभक्त पिता से मांगते हैं। उनका समाधान न पिता और न ही अन्य कोई कर पाता है। उनमें सच्चे शिव वा ईश्वर को जानने का संस्कार वपन हो जाता है। शिवरात्रि की घटना के बाद मूलशंकर, स्वामी दयानन्द का जन्म का नाम, की बहिन और चाचा की मृत्यु हो जाती है। अब उन्हें मृत्यु से डर लगता है। वह मृत्यु का उपाय जानने की कोशिश करते हैं, परन्तु उनका निश्चित समाधान घर पर रहकर नहीं होता। अतः वह अपने प्रश्नों के समाधान के लिए बड़े योगियों व विद्वानों की शरण में जाने के लिए अपनी आयु के बाईसवें वर्ष में घर का त्याग कर निकल पड़ते हैं। स्वामी विरजानन्द जी के पास सन् 1860 में पहुंच कर व उनसे लगभग 3 वर्ष अध्ययन कर उनकी सभी इच्छायें पूरी होती है। समाधि सिद्ध योगी तो वह गुरु विरजानन्द जी के पास आने से पहले ही बन चुके थे। अब वह वेद विद्या में निष्णात भी हो गये। स्वामी विरजानन्द जी से विदा लेने से पूर्व स्वामी दयानन्द अपने गुरु के लिए उनकी प्रिय वस्तु लौंग दक्षिणा के रूप में लेकर उपस्थित होते हैं। गुरुजी इस दक्षिणा को स्वीकार करते हुए दयानन्द जी से अपने मन की बात कहते हैं। उन्होंने कहा कि सारा देश ही नहीं अपितु विश्व अज्ञान व अन्धविश्वासों की बेडि़यों में जकड़ा हुआ है जिससे सभी मनुष्य नानाविध दुःख पा रहे हैं। उन्हें दूर करने का एक ही उपाय है कि वेदों के ज्ञान का प्रचार कर समस्त अज्ञान, अन्धविश्वास व कुरीतियों को दूर किया जाये। गुरुजी स्वामीजी से वेदों का प्रचार कर मिथ्या अन्धविश्वासों का खण्डन करने का आग्रह करते हैं। उत्तर में स्वामी दयानन्द अपने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर उसके अनुसार अपना जीवन अर्पित करने का वचन देते हैं। गुरुजी दयानन्दजी के उत्तर से सन्तुष्ट हो जाते हैं। स्वामी दयानन्द का इस घटना के बाद का सारा जीवन अज्ञान पर आधारित अन्धविश्वासों के खण्डन, समाज सुधार व सत्य ज्ञान के भण्डार वेदों के प्रचार में ही व्यतीत होता है।

स्वामी दयानन्द जी ने गुरुजी से विदा लेकर मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, फलित ज्योतिष, सामाजिक विषमता व सभी सामाजिक कुरीतियों का खण्डन करने के साथ वेदों की शिक्षाओं का प्रचार किया। वह एक-एक करके अनेक स्थानों पर जाते, वहां प्रवचन देते, लोगों से मिलकर उनकी शंकाओं का समाधान करते, पौराणिक व इतर मतों के विद्वानों से शास्त्रार्थ करते और वेदों के प्रमाणों व युक्तियों से अपनी बात मनवाते थे। 16 नवम्बर, 1869 को काशी में मूर्तिपूजा पर वहां के शीर्षस्थ लगभग 30 पण्डितों से उनका विश्व प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुआ जिसमें वह विजयी होते हैं। इसके बाद उन्होंने आर्यसमाजों की स्थापना, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, वेद भाष्य, संस्कारविधि, आर्याभिविनय, गोकरूणानिधि, व्यवहारभानु आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया तथा परोपकारिणी सभा की सथापना की। इन सबका उद्देश्य देश व विश्व से धार्मिक अज्ञान, अन्धविश्वास सहित सामाजिक विषमता तथा सभी सामाजिक कुरीतियों को दूर कर वैदिक धर्म की विश्व में स्थापना करना था जिससे संसार से दुःख समाप्त होकर सर्वत्र सुख व आनन्द का वातावरण बने।

स्वामी विरजानन्द जी और स्वामी दयानन्द के जीवन का सबसे बड़ा गुण उनका ईश्वर के सच्चे स्वरुप का ज्ञान, उसके प्रति पूर्ण समर्पण, वेदों का यथार्थ ज्ञान तथा उसके प्रचार व प्रसार की प्रचण्ड व प्रज्जवलित अग्नि के समान तीव्रतम प्रबल व दृण भावना का होना था। अज्ञान व अन्धविश्वास सहित सामाजिक विषमता व सभी सामाजिक कुरीतियां उन्हें असह्य थी। उन्होंने प्राणपण से वेदों का प्रचार कर अज्ञान के तिमिर का नाश किया। उन दोनों महापुरुषों के समान वेदों का ज्ञान रखने वाला व उनके प्रचार व प्रसार के लिए अपनी प्राणों को हथेली पर रखने वाला उनके समान ईश्वरभक्त, वेदभक्त, देशभक्त, ईश्वर-वेद-धर्म का प्रचारक, अद्वितीय ब्रह्मचारी, माता-पिता-परिवार-गृह-संबंधियों का त्यागी व हर पल समाज, देश व मानवता के कल्याण का चिन्तन व तदनुरुप कार्यों को करने वाला महापुरुष दूसरा नहीं हुआ। उन्होंने अपने जीवन में जो कार्य किया, वह आदर्श कार्य था जो ईश्वर द्वारा प्रेरित होने सहित उसे करने की समस्त शक्ति व बल भी उन्हें ईश्वर की ही देन था। यदि यह दोनों महापुरुष यह कार्य न करते तो हमें लगता है कि कुछ समय बाद वैदिक धर्म व संस्कृति संसार से विदा हो कर इतिहास की वस्तु बन जाती। स्वामी विरजानन्द और स्वामी दयानन्द जी ने परस्पर मिलकर जो कार्य किया उसे अभूतपूर्व कह सकते हैं। महर्षि दयानन्द जैसा ईश्वर-वेद-देश-समाज भक्त दूसरा मनुष्य नहीं हुआ है। उन्होंने संसार के लोगों को सच्चा मार्ग दिखाया। उसी मार्ग का अनुसरण कर ही मनुष्य अपनी आत्मा की उन्नति कर सकता है, अपने भविष्य व मृत्योत्तर जीवनों व जन्मों को संवार सकता है और धर्म-अर्थ-काम व मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है। यही मनुष्य जीवन का चरम व प्रमुख उद्देश्य व लक्ष्य है। अपने गुणों व कार्यों से न केवल गुरु विरजानन्द अपितु महर्षि दयानन्द भी सूर्य व चन्द्र की समाप्ति तक अमर रहेंगे। इन दोनों महान आत्माओं का विश्व के इतिहास में अद्वितीय व अमर स्थान बन गया है। उनके प्रयासों के परिणाम से हम निःसंकोच वैदिक धर्म को भविष्य का विश्व धर्म भी कह सकते हैं जिसमें सभी मनुष्यों का सुख व कल्याण निश्चित रुप से निहित है। अन्य कोई मार्ग व पथ मनुष्य जीवन व देश की उन्नति व दुःखों से मुक्ति का नहीं है।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001/फोनः09412985121**